व्यवहार, निश्चयनय व अनेकान्तवाद

श्रीमती फूलकुंवर जैन

आज व्यवहार और निश्चयनय के विषय में समाज में काफ़ी चर्चा है। चर्चा से कुछ जन-जागृति हुई, कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित भी हुआ, कुछ लोगों ने अनेकान्तवाद के रहस्य को समझा। अनेकान्तवाद को समझते हुए भी संसार में नाना प्राणी और उनकी अपनी नाना परिणतियां हैं, जो कि उनके विचारानुसार भले ही ठीक हों एवं अच्छी हों, पर सबसे अच्छी चीज यह है कि बिना किसी ननु नच के पक्ष व्यामोह से रहित होकर वस्तु के स्वरूप को सिद्धान्त के आधार पर अनेकांत दृष्टिपूर्वक अपने में उतारना चाहिये।

सबसे पहले नय की परिभाषा को समझना अतीव आवश्यक है। "व्यक्ति कीर्ण वस्तु व्यावृत्तिहेतुर्लक्षणम्" राजवार्तिके। परस्पर मिली हुई वस्तुओं में से कोई एक वस्तु अलग की जाती है वह लक्षण है। "प्रमाण गृहीतार्थैकदेशग्राही प्रमातुरभिप्रायः नयः" प्रमाण से जाने हुए पदार्थ के एक देश (अंश) को ग्रहण करने वाला ज्ञाता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं। अथवा "ज्ञातुरभिप्रायः नयः" ज्ञाता का अभिप्राय नय है। नयों द्वारा ही वस्तु के नाना गुणांशों का विवेचन संभव है, जिसका यथोचित प्रसंग नय विचार के द्वारा ही संभव हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि जितने प्रकार के वचन हैं उतने ही प्रकार के नय कहे जा सकते हैं। तथापि वर्गीकरण की सुविधा के लिये नयों की संख्या सात स्थित की गई है, जिनके नाम हैं:—नेगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत। नैगम का अर्थ है न एकः गमः अर्थात् एक ही बात नहीं। जब सामान्यतया किसी वस्तु की भूत, भविष्यत्, वर्तमान पर्यायों को मिला जुलाकर बात कही जाती है तब वक्ता का अभिप्राय नैगम नयात्मक होता है। संग्रहनय के द्वारा हम उत्तरोत्तर वस्तुओं को विशाल की दृष्टि से समझने का प्रयत्न करते हैं। जब हम कहते हैं कि यहां के सभी प्रदेशों के वासी, सभी जातियों के और सभी पंथों के चालीस करोड़ मनुष्य भारतवासी होने की अपेक्षा एक हैं तब ये सभी बातें संग्रहनय की अपेक्षा सत्य हैं।

इसके विपरीत जब हम मनुष्य जाति को भेदों में विभाजित करते हैं, तथा इनका पुनः अवान्तर प्रदेशों एवं प्रान्तीय, राजनैतिक, धार्मिक, जातीय आदि उत्तरोत्तर अल्प अल्पतर वर्गों में विभाजन करते हैं, तब हमारा अभिप्राय व्यवहार नयात्मक होता है। इस प्रकार संग्रह और व्यवहार नय परस्पर सापेक्ष है और विस्तार व संकोचात्मक दृष्टियों को प्रकट करने वाले हैं। दोनों सत्य हैं और दोनों अपनी अपनी जगह सार्थकता रखते हैं। उनमें परस्पर विरोध नहीं है किन्तु वे एक दूसरे के पूरक हैं। ये नैगमादि तीनों नय द्रव्यार्थिक माने गये हैं क्योंकि इनमें प्रतिपाद्य वस्तु को द्रव्यात्मकता का ग्रहण कर विचार किया जाता है और उसकी पर्याय गौण रहती है। ऋजुसूत्रादि अगले चार नय पर्यायार्थक कहे गये हैं, क्योंकि उनमें पदार्थों की पर्याय विशेष का ही विचार किया जाता है।

यदि कोई मुझसे पूछे कि तुम कौन हो और मैं उत्तर दूँ कि मैं प्रवक्ता हूं तो यह उत्तर ऋजुसूत्र नय से सत्य ठहरेगा, क्योंकि मैं उस उत्तर द्वारा अपनी एक पर्याय या अवस्था विशेष को प्रकट कर रही हूँ, जो एक काल मर्यादा के लिए निश्चित हो गई है। इस प्रकार वर्तमान पर्यायमात्र को विषय करने वाला नय ऋजुसूत्र कहलाता है। इसी प्रकार व्युत्पत्ति की अपेक्षा भिन्नार्थक शब्दों को जब हम रूढ़ि द्वारा एकार्थवाची बनाकर प्रयोग करते हैं तब यह बात समभिरूढ़ नय की अपेक्षा उचित सिद्ध होती है। जैसे देवराज के लिये इन्द्र, पुरन्दर या शक्र, घोड़े के लिये अश्व आदि शब्दों का प्रयोग। इन शब्दों का पृथक् पृथक् अर्थ है तथापि रूढ़िवशात् वे पर्यायवाची से बन गये यही समभिरूढ़ नय है। एवम्भूतनय की अपेक्षा वस्तु की जिस समय जो पर्याय हो, उस समय उसी पर्याय के वाची शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे किसी मनुष्य को पढ़ाते समय पाठक, पूजा करते समय पुजारी, एवं युद्ध करते समय योद्धा कहना।

वस्तुतः नय के द्वारा ही वस्तु के एक देश और प्रमाण के द्वारा वस्तु के सर्व का ज्ञात होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वस्तु का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वांश रूप में ज्ञान तो व्यवहार नय से होता है और मात्र निश्चय नय से नहीं होता। दोनों नय सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं।

जब व्यवहार नय से कथन किया जाता है तब निश्चय नय गौण रहता है। दोनों नय अपनी अपनी जगह मृतार्थ और सत्यार्थ माने गये हैं। एक नय दूसरे नय को गौण तो कर सकता है पर वह उसका विनाश नहीं कर सकता। यदि ऐसा होने लगे तो सभी नय निरपेक्ष हो जायेंगे तब नयों का जो साक्षेपवाद सिद्धान्त है वह असत्य सिद्ध होगा।

नय के प्रमुखतः २ भेद हैं—व्यवहार नय और निश्चय नय अथवा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।

व्यवहारनय (पर्यायार्थिकनय) भेद दृष्टि से लेकर कथन करता है और निश्चयनय अभेद दृष्टि को लेकर कथन करता है कहा भी है:—

"स्वाश्रितो निश्चयः और पराश्रितो व्यवहारः।"

वस्तु को ज्ञात करने की दृष्टि को दोनों नयों की जानकारी अनिवार्य है। एक ही नय को समझ लेना, एक ही नय को मान लेना, एक ही नय से कथन करना और इसको ही संपूर्ण मान लेना एकान्त है और दोनों नयों को समझकर दोनों रूप में वस्तु को कहना सो अनेकान्त है। जहां अनेकान्त दृष्टि है वहां सभी तरह के विवाद, संघर्ष एवं कलह स्वयमेव शान्त हो जाते हैं और जहां अनेकान्त नहीं है वहां संघर्ष, विद्रोह कलहादि सब कुछ हैं।

जीव अनादिकाल से अज्ञानभाव के (विभाव परिणति) कारण अशुद्ध दशा में रहता है लेकिन ज्ञानभाव के (स्वभाव परिणति) कारण जीव की शुद्ध दशा रहती है। इस दृष्टि से जीव शुद्ध भी है और अशुद्ध भी है।

अब कोई यहां ऐसा कहे कि जीव तो शुद्ध ही है सिद्ध ही है सो कैसे ? हां ! मुक्त जीवों के लिये संभव नहीं। संसारी जीव सिद्ध समान स्वभाववाले तो हैं, पर वे स्वयं सिद्ध नहीं हैं। क्योंकि सिद्ध होने में बाधक विभाव परिणति जो काम कर रही है। जब इस परिणति को नष्ट किया जाये तभी जीव सिद्ध हो सकता है अन्यथा नहीं।

जीव और कर्म का अनादिकाल से ही संयोग संबंध या निमित्त नैमित्तिक संबंध चला आ रहा है। जीव अनादिकाल से ही मुक्त नहीं है, यदि मुक्त होता तो अनादि से संसार का और संसार बन्धन का प्रश्न ही नहीं होता। संसार एक बन्धन है। इस बन्धन को काटना ही मुक्ति है। बन्धन की ही मुक्ति होती है, मुक्ति की मुक्ति नहीं होती। संसार में संसरण, विभाव, परिणति के द्वारा होता है, संसार ही व्यवहार है। व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है। निश्चय की प्राप्ति में व्यवहार साधन है।

व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। दोनों में कार्यकारण का भेद है। जिस प्रकार सुवर्ण-पाषाण साधन हैं सुवर्ण साध्य है। उसी प्रकार निश्चय व्यवहार को समझना चाहिये।

आचार्य कहते हैं कि भव्य जीवो ! यदि तुम जिनमत की प्रवर्तना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को सम्मुख रखो क्योंकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ (व्यवहार मार्ग) और निश्चय के बिना तत्व (मार्गफल) का नाश हो जायेगा। यहां मार्ग साधन है और मार्गफल (गन्तव्य स्थल पर पहुंचना) साध्य है।

सुद्धो सुद्धा देखा, णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
व्यवहार देसिदापुण, जेदु अपर मेढ़ि दाभावे ।।१२।।
समयसार गाथा ।।१२।।

जो परमभाव में स्थित है, यानी दर्शन-ज्ञान-चारित्र है उनको शुद्ध आत्मा का उपदेश करने वाला शुद्ध नय जानने योग्य है। और जो अपरमभाव में स्थित है यानी दर्शन-ज्ञान-चरित्र की पूर्णता को नहीं पहुंचे हैं वे व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं। यह अवस्था (अपरभाव) जीवन की साधक दशा मानी गई है। साधक दशा क्षीणमोह १२वें गुणस्थान तक रहती है। साधक जिस साध्य प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ कर रहा था उस साहस की सिद्धि का फल (केवल ज्ञान) उसे सयोगकेवली १३ वें गुणस्थान में प्राप्त होता है यह गुणावस्था अरहन्तावस्था की है। शिष्य ने भगवन्त कुन्द-कुन्दाचार्य से प्रश्न किया है कि भगवान यदि परमार्थ का ही उपदेश सब कुछ है तो फिर व्यवहार का उपदेश किस लिये दिया जाता है ? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्य गाथा कहते हैं—

जह जवि सक्कमणज्जो, अण्णजभासंविणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवारसणमसक्कं ।।८।।
—समयसार।

जैसे अनार्य (म्लेच्छ) जन को अनार्थ भाषा (म्लेच्छ भाषा) के बिना किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिये कोई समर्थ नहीं है। उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश देना अशक्य है अर्थात् जो लोग परमार्थ या शुद्ध नय को नहीं जानते हैं उन्हें व्यवहार पूर्वक परमार्थ का उपदेश देना चाहिये। जैसे एक पंडितजी ने एक म्लेच्छ से कहा "स्वस्तिरस्तु" तब म्लेच्छ उसको घूरकर या टकटकी लगाकर देखने लगता है। क्योंकि म्लेच्छ "स्वस्तिरस्तु" का अर्थ नहीं जानता। उसी समय एक दुभाषिये ने कहा कि पंडितजी कहते हैं कि तेरा कल्याण हो। तब म्लेच्छ स्वस्ति का अर्थ समझकर प्रसन्न होता है।

अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। मूल में द्रव्य अन्य रूप नहीं होता। मात्र पर द्रव्य के निमित्त से अवस्थामलिन (अशुद्ध पर्याय) हो जाती है। द्रव्य दृष्टि से देखा जाय तो वही है और पर्याय दृष्टि से देखा जाय तो मलिन है। जीव की यह अवस्था पुद्गल कर्म के निमित्त से रागादि रूप मलिन पर्याय है। द्रव्य दृष्टि से तो जीव में ज्ञायकत्व ही है, जड़त्व नहीं।

जिनमात्र स्याद्वाद रूप है। वह जीव को न सर्वथा शुद्ध मानता है और न सर्वथा अशुद्ध किन्तु वह वस्तु के शुद्ध अशुद्ध दोनों धर्म को मानता है। क्योंकि वस्तु में अनंत धर्म समाये हुए हैं, वस्तु को सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व होता है। इसलिये स्याद्वाद की शरण लेकर वस्तु को सभी धर्मों से (विभिन्न नयों से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझना चाहिये। नय यदि सापेक्ष हों तो सुनय होते हैं और यदि निरपेक्ष हों तो दुर्नय होते हैं। नय अपने विपक्ष की अपेक्षा रखते हैं, इसलिये वे सापेक्ष हैं और सुनय हैं। इसके विपरीत दुर्नय है। सुनय से ही नियमपूर्वक सफल वस्तुओं की सिद्धि होती है और दुर्नय से नहीं होती।

परमागमस्यबीजं, निषिद्ध जात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनय विलसितानां विरोधधनं नमाम्यने कान्ताम्॥

——पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

आचार्य अमृतचन्द्र ने यहाँ अनेकान्त को नमस्कार किया है। अनेकान्त कैसा है? इसके विशेषण भिन्न हैं:——

१. अनेकान्त परमागम का (जैन सिद्धान्त) बीज है।

२. जन्मांध पुरुषों के हस्ती संबंधी ज्ञान का विरोधक है।

३. समस्त नयों के विलास के विलय के विरोध को दूर करने वाला है।

निरपेक्ष नया मिथ्या, सापेक्षावस्तुतेऽर्थकृत्॥१०२॥

——आप्तमीमांसा

निरपेक्ष नय मिथ्या है, साक्षेप नय सत्य है। सार्थक है——

दुर्नयंकान्तमारूढ़ा भावनां स्वार्थिका हिते।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ता सकलंका नयामतः॥८॥

——आलापपद्धति

स्याद्वाद–प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है किन्तु अनेक धर्मों का कथन एक साथ करना असंभव है क्योंकि वाणी क्रमशः ही विवेचन कर सकती है। जिस समय वस्तु के जिस विपक्षित धर्म का कथन हो रहा है, उस समय वस्तु के जिस अविक्षित धर्मों का अभाव नहीं रहता, अपितु गौण रहते हैं। किसी अपेक्षा से कहा जा रहा है। इसीलिये "स्यात्" शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्यात् पद से सर्वथा एकान्त का निषेध होता है और जो आगम स्यात् पद से अंकित है, ऐसा आगम जैनागम ही हो सकता है। जो केवल एक ही नय को पकड़े हुए हैं वे नयाभासी हैं और जो दोनों नयों के सहारे चलते हैं वे अनेकांती हैं। जब तक नींव में दोनों नयों को न अपनाया जावे तब तक आत्म-कल्याण की बात तो बहुत दूर रही व्यवहार शुद्धि भी नहीं हो सकती। जिस प्रकार एक हाथ व एक पैर से (बगैर दोनों पैरों के, हाथों के, आंखों के) जीवन अपूर्ण रहता है। असहाय परमुखापेक्षी रहता है, उसी प्रकार एक नयावलम्बी का जीवन समझना चाहिये।

काय की सिद्धि में उपादान और निमित्त दोनों ही कारण माने गये हैं। यहां केवल उपादान को ही सब कुछ मानना और निमित्त को कुछ भी न मानना या दबी जबान से यत्किंचित् मानना यह तो कोई सिद्धान्त की बात नहीं मानी जा सकती। मिट्टी का पिण्ड स्वयं अपनी योग्यता के कारण या उपादान के कारण वह घटरूप परिणमित होता है, यह सत्य है। लेकिन मिट्टी के पिण्ड को जब तक कुम्भकार चक्र दण्ड चीवर आदि का निमित्त न मिले तब तक वह मृत्तिका पिण्ड त्रिकाल भी घट रूप में परिणमित नहीं हो सकता।

इसका अर्थ है कि उपादान भी निमित्त की अपेक्षा रखता है, बगैर निमित्त के उपादान अधूरा है, लंगड़ा है, पंगु है। आत्मा अपने ही उपादान के कारण मुक्ति प्राप्त करती है, पर निर्ग्रन्थता उत्तम ध्यान, उत्तम ध्यान में निमित्त उत्तम संहनन, तपस्या आदि का निमित्त न मिले तब तक मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। मुक्ति इतनी सस्ती नहीं जो बिना त्याग तपस्या के घर बैठे ही प्राप्त हो जाये ऐसा होता या केवल उपादान से ही निमित्त के बिना मुक्ति प्राप्त होती तो इस पंचमकाल में भी इस भूमि से (भरत क्षेत्र संबंधी आर्यखण्ड) मुक्ति प्राप्त हो जाती।

निमित्त उपादान, निश्चय व्यवहार आदि को स्याद्वाद के आधार पर और अनेकान्त के आधार पर समझ कर, आत्म कल्याण की ओर जन जागृति हो, यही कामना है।

○

हम और हथकड़ी

हम सोचते हैं, कि
हाथघड़ी को हमने
अपनी
कलाई में कैद कर रखा है,
वस्तुतः
उसने ही हमें
अपने बन्धन में बाँध रखा है,
मिनट दर मिनट
हम देखते हैं उसे
और भागते हैं
मशीन के पुरजे की तरह।
नजर अटकी रहती है
मात्र उसके कांटों पर,
पुर्जों पर
और कलाई पर
काश! हम देख पाते
अपनी हथेलियों को भी
और समझ पाते
उन कर्मों को
जिन्हें ये हथेलियाँ करती हैं।
तो कदाचित
हम समझ पाते
कि हम क्या हैं?
कौन कैद है और
कौन आजाद है?

बापूलाल सकलेचा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org